* चतुर्थ अध्याय *

उपसंहार

उपसंहार

कबीर हिंदी साहित्य के मध्यकाल के श्रेष्ठ कवि है। वे तत्व की बात कहने वाले कवि माने जाते हैं। उनका काव्य हिंदी साहित्य की अनुपम निधि है। उनपर हिंदी भाषा - भाषियों का गर्व है। कबीर का काव्य अपने युग का प्रतिबिम्ब है और युग का मार्ग - निर्देश भी करता है। वे बडे प्रतिभावान, अक्खड - फक्कड और मस्त मौला थे। उन्होंने जो कुछ कहा है निर्भिक और निर्लिप्त होकर ईमानदारी के साथ कहा है। कबीर बडे स्पष्टवादी थे। इस-लिए मध्यकालीन विचारकों में कबीर का स्थान बहुत ऊँचा है। उनके स्वतंत्र चिन्तन में निष्पक्षता और प्रखरता के साथ संयम और शालीनता है, तर्क के साथ जागरूकता है। कबीर ने सभी रूढियों, आडम्बरों और पाखण्डों का खुलकर खण्डन करके समाज में निरन्तर चलने वाली हलचल पैदा कर दी। मसि कागज को न छूने वाले कबीर ने काशी के पण्डितों, मुल्लाओं और काजियों को जिस साहस और निर्भिकता के साथ ललकारा था वह इतिहास की पहली घटना थी। इस तरह से उनका व्यक्तित्व और कृतित्व अलौकिक एवं महान है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि ऐसे महान उपकारी कविश्रेष्ठ का जीवन-वृत्त अभी तक शोध एवं विवाद का ही विषय बना हुआ है।

इस लघु शोध - प्रबंध के प्रथम अध्याय में मैंने कबीर के व्यक्तित्व और कृतित्व का सामान्य परिचय दिया है। इस विषय पर लिखते वक्त कबीर का जीवन वृत्तांत संक्षेप में लिखना आवश्यक लगा। इसलिए मैंने अनेक उपलब्ध ग्रंथों के सहारे कबीर का जीवन वृत्तांत लिखने का प्रयास किया है।

कबीर के जन्म, जन्मस्थान, जन्मतिथि, माता-पिता, गुरु और नाम आदि के संबंध में विद्वानों में काफी मतभेद हैं। इसका कारण यह है कि उनके जीवन-काल के संबंध में सही ऐतिहासिक तिथि उपलब्ध नहीं होती। विविध लोकोक्तियाँ और किंवदन्तियाँ तथा हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर विद्वानों ने अनेक अलग-अलग निष्कर्ष निकाले हैं। अंत: साक्ष्य और बहि:साक्ष्य के आधार पर कोई निश्चित प्रामाणिक तिथि जो सब दृष्टि से सब को मान्य हो, नहीं मिलती। फिरभी अनेक विद्वानों के मतों और प्राप्त सामग्रियों के आधार पर यहीं बात स्पष्ट होती है कि कबीर का जीवन काल सं. 1455 से 1575 तक है।

कबीर के माता-पिता, जन्मस्थान और गुरु के बारे में भी बहुत मतमतान्तर हैं। लेकिन यह निश्चित है कि उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय काशी में बिताया था। वे जाति के जुलाहे थे। उनका परिवार था। संसारिक होते हुए भी वे सांसारिक मोहजाल में लिप्त न थे। भक्ति में हमेशा लीन होने के कारण अपने गृहस्थ जीवन का निर्वाह करने में उन्हें कठिनाई होती थी। कबीर पढे - लिखे बिल्कुल नहीं थे, परन्तु उनका जीवन - अध्ययन बहुत गहरा था। साधु - सन्तों के साथ हमेशा रहने के कारण उन्हें ज्ञान का बहुत बडा भण्डार प्राप्त हुआ था। उनके गुरु के संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है, फिर भी उन्होंने गुरु के संबंध में अत्यन्त आदर-भाव प्रकट किया है। बहुत से विद्वान स्वामी रामानंद जी को कबीर के गुरु मानने के पक्ष में हैं। अपने स्पष्ट और निर्भिक विचारों के कारण उन्हें पर्याप्त विरोधों का सामना करना पडा। कबीर को लम्बी आयु प्राप्त हुई थी। अंतत: वे मृत्यु से पहले काशी छोडकर मगहर गये थे। वही मगहर में ही उनकी मृत्यु हुई।

कबीर ने कभी 'मसि कागज' को छूआ नहीं था, इसलिए उन्होंने स्वयं अपनी वाणी को लिपिबद्ध नहीं किया था। उनके शिष्यों ने कुछ को लिपिबद्ध किया

और कुछ लोगो नें जबानी याद रखा।

कबीर जन्म-जात विद्रोही कवि थे। इसलिए उनमें साहस और आत्म-विश्वास था। कबीर के व्यक्तित्व को देखने पर वे एक भक्त, समन्वयवादी युगपुरुष, युगद्राष्टा, समाज-सुधारक सन्त और भक्त कवि थे, ऐसा स्पष्ट दिखाई देता है। उनकी सभी कृतियों को देखने पर यह अनुमान लगा सकते हैं कि वे काव्य - प्रतिभा के कवि थे। कबीर पहले भक्त हैं और बाद में कवि।

द्वितीय अध्याय में मैंने कबीरकालीन भारत की परिस्थितियों का वर्णन किया है। कबीर का युग संघर्ष का युग था। इसलिए तत्कालीन समाज की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिस्थिति पर विचार किया है। संस्कृति, धर्म, राजनीति, अर्थकारण और सामाजिक बातों में बहुत बडे संघर्ष थे और इन संघर्षों में जो शक्तिशाली था वही विजयी होता था। कबीर - काल में समाज की स्थिति बढी शोचनीय थी। धर्म और जाति समाज की दुर्गति के कारण बन गये थे। हिंदु और मुसलमान इन दोनों समाजों की धार्मिक एवं व्यावहारिक सभी बातों में आडम्बर बढता जा रहा था। वे दोनों असत्या और मिथ्यातत्व के पुजारी होते जा रहे थे। जिसके कारण जाति तथा देश में सर्वत्र अस्त-व्यस्तता और विशृंखलता फैल गयी थी। धर्म और राजनीति जनता के दु:ख के कारण थे।

कबीर के समय में हिन्दु और मुसलमानों के बीच संघर्ष बढ गया था। हिन्दु धर्म पुराणा था, इस कारण अपने देश के रीति-रिवाज तथा संस्कारों में घुल मिल गया था, जिसके कारण जनता अपार मोह से उसके साथ लगी हुई थी। इस्लाम धर्म तलवार के बल पर चलना था। समाज में अनेक धर्म और पंथ प्रचलित थे, जिसमें मिथ्याचार और बाह्याडम्बर, पाखण्ड समाया हुआ था। शैव, वैष्णव, श्वेतांबर-दिगंबर, हीनयान, महायान, सिद्ध-शाक्त, बैरागी तथा बनखण्डी आदि साधुओं के अनेक सम्प्रदाय समाज में वर्तमान थे।

जनता अपनी रोजी-रोटी के लिए कोई भी धर्म, कोई भी व्यवसाय करने

के लिए तैयार थी। इसी काल में परिस्थितिवश हिन्दु जनता मुसलमान बनती जा रही थी। मुसलमानों के अन्याय और अत्याचार के कारण ही समाज में पर्दा - प्रथा का प्रचलन हुआ। सामाजिक व्यवस्था ठीक न होने के कारण लोगों का चारित्रिक पतन हुआ था। और इन सभी दुर्व्यवस्थाओं के विरोध में कबीर के विद्रोही विचारों का अविर्भाव हुआ।

विदेशीयों के आक्रमण के कारण और राजनीतिक उथल-पुथल के कारण जनता की आर्थिक स्थिति अच्छी न रही। राज्य की ओर से सामाजिक विकास के लिए कोई अर्थव्यवस्था नहीं थी। लेकिन राज परिवार में फिजुल खर्च एवं विलासिता अधिक थी। इसी कारण नैतिकता का पतन हुआ।

कबीर कालीन साहित्य संघर्ष में अनेक धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्रान्तियाँ हो रही थी। इन्हीं के कारण मध्यकालीन भक्ति साहित्य का विकास हुआ। उस समय अरबी, फारसी, उर्दू, संस्कृत तथा आदि भाषाओं में साहित्य लिखा गया। इस काल में स्वामी रामानंद, रैदास आदि संतों ने और खास करके कबीर ने सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक दुर्व्यवस्थाओं के प्रति आवाज उठायी और एक दूसरे के निकट आने की, मिलके रहने की भावना को, युग की आवश्यकताओं को बल प्रदान किया।

तीसरा अध्याय :- जो नवनीत हैं और मेरे लघु शोध-प्रबंध का हृदय-स्थल है। इस अध्याय में मैंने कबीर के विद्रोही भावों को, विचारों को स्पष्ट किया है। यह अध्याय निम्न मुद्दोंपर आधारित है।

अ. जाति - पाँति के संदर्भ में विद्रोह।
आ. धर्म के संदर्भ में विद्रोह।
इ. पूजा - पाठ के संदर्भ में विद्रोह।
ई. अंधविश्वास के संदर्भ में विद्रोह।

अ. जाति-पाँति के संदर्भ में विद्रोह :-

कबीर मनुष्य मात्र को समान समझते थे। अत: वे जहाँ भी वह भेद-

पूर्ण आचरण देखते थे वहीं अपना विरोध और कभी-कभी आक्रोश तक व्यक्त कर देते थे। कबीर हिन्दु और मुसलमान धर्म के बीच कोई भेद नहीं मानते थे। हिन्दुओं की वर्ण-व्यवस्था कबीर की नजर में मानव-विरोध थी, क्योंकि वह मानव-मानव के बीच भेद निर्माण करती है। कबीर कहते हैं कि ईश्वर को मानव समाज की विषमता मान्य होती तो उसने इतने प्राणियों की भाँति उत्पत्ति की प्रक्रियाओं को भिन्न बनाया होता। कबीर कालीन समाज अनेक धर्मों और जातियों, उपजातियों में विभाजित था। इस कारण एक जाति दूसरी जाति को दबाने का प्रयास कर रही थी। दूसरी जाति पराजित होने पर भी अपनी हार मानने को तैयार न थी। इसका परिणाम यह हुआ कि द्वेष की अग्नि सदा भभका करती थी और धर्म की आड में, इस अग्नि में ये दोनों जातियाँ नित्य प्रति होम हुआ करती थी। इन्हें देखकर कबीर की सरल और सात्विक आत्मा काँप उठी। उन्हें दोनों वर्गों के ठेकेदारों से इतनी अधिक घृणा हो गयी कि यह भयंकर क्रान्ति के रूप में व्यक्त होने लगी।

कबीर ने समाज में प्रचलित जाति-पाँति, ऊँच-नीच और ब्राह्मण-शूद्र के भेद का विरोध किया हैं। इसी कारण उन्हें समाज-सुधारक कहा जाता हैं। उनको विश्वास था कि इन सारे भेदों को दूर कर देने से एक सुन्दर समाज की निर्मिति हो सकती है।

जातियता का विकास सामन्ती शृंखलाओं के छिन्न भिन्न हो जाने पर ही हुआ। कबीर जनता की मनोवृत्ति से भली भाँति परिचित थे। वे यह अच्छी तरह जानते थे कि शासक वर्ग की सभ्यता, संस्कार और जातियता का जनता से कोई सम्बन्ध नहीं हैं, वरन् सामन्ति जातियता मानव के विकास में बाधक हैं। जनता की संस्कृति और जातियता का सम्बन्ध सर्वथा दूसरे वर्ग से है। परन्तु कबीर ने जातियता के प्रचार के लिए रूढिवादी साधनों को दूर कर नवीन साधनों को अपनाया है।

आ. धर्म के संदर्भ में विद्रोह :-

कबीर की धार्मिक विचारधारा का उदय हिन्दु और इस्लाम धर्मों के पाखण्ड पूर्ण एवं विकृत रूप की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। कबीर ने विधि विधान

प्रधान हिन्दु और इस्लाम धर्म के विरुद्ध सहज धर्म का निर्माण किया इसे ही लोग मानव धर्म, निज धर्म, हित धर्म भी कहते हैं।

कबीर का धर्म बडा व्यापक हैं। जिस प्रकार उनका ब्रहम् व्यापक और सब जाति, वर्गों का जन्मदाता है, उसी प्रकार उनका धर्म भी व्यापक हैं। इनका धर्म सार्वभौमिक और युगों तक अभिनव बना रहनेवाला धर्म हैं। देश काल की सीमाएँ उनके धर्म और उनके उदात्त रूप को स्पर्श नहीं कर पाती हैं। कबीर का धर्म-धनी-दीन, बालक, वृद्ध, नर-नारी, सबके लिए समान रूप से उपयोगी और महत्वपूर्ण हैं। उनके व्यापक धर्म का आधार मानव की शाश्वत सद्प्रवृत्तियाँ हैं। यहीं शाश्वत सद्प्रवृत्तियाँ जीवन की उदात्त और समुन्नत बनाती हैं। कबीर ने मानव जीवन की उन्नत और विकासशील बनाने के लिए उपदेश दिये।

कबीर ने जिस कठोरता से रूढियों आडम्बरों का विरोध किया उसी दृढता से उन्होंने बुद्धिवादी सिद्धान्तों की भी स्थापना की हैं। वे किसी भी बात को तभी स्वीकार करते थे, जब वह उनकी बुद्धि के अनुभव की कसौटी पर खरी उतरती थी। कबीर सच्चे सत्यान्वेषक थे। कबीर की धार्मिकता बाह्याचारों, बाह्याउम्बरों से पृथक और दूर हैं। उनकी धार्मिकता में छुआछूत, चन्दन-तिलक, व्रत माला, जप-तप, बाँग, नमाज और अजान में सन्निहित हैं। कबीर की धार्मिकता व्यापक, शुद्ध और उदात्त हैं। उनका सन्देश है, कि मानव को मानव धर्म के सहज धर्म का परिपालन करना चाहिए। इस प्रकार कबीर ने धर्म के क्षेत्र में एक क्रान्ति उपस्थित की।

इ. पूजा-पॉठ, बाह्याउम्बर के संदर्भ में विद्रोह :-

कबीर पूजा पाठ, बाह्याउम्बर, असत्य के कहर विरोधी थे। जहाँ कहीं भी जिस किसी रूप में वह उन्हें दिखाई देता था, वे उसकी खूब खिल्ली उड़ाते थे और उसका जोरदार शब्दों में खण्डन करके अन्त में उसे धराशायी कर देते थे। कबीर का सारा जीवन असत्य और आडम्बर से युद्ध करने में बीता था।

कबीर ने तत्कालीन समाज में प्रचलित बाह्याउम्बरों और दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया। उन्होंने दोनों विरोधी वर्गों की एकता और प्रेम का

मार्ग प्रदर्शित किया और पारस्पारिक विरोधी भावनाओं को शांत करने का प्रयत्न किया। कबीर के समय में जनता पथभ्रष्ट हो चुकी थी। बड़े-बड़े योगी माया में लिप्त थे। योगी पण्डित, संन्यासी, मौलाना, काजी सब मदमस्त हो गये थे। हिन्दु-मुसलमान दोनों ही ब्रहम् के विषय को लेकर एक दूसरे के शत्रु बने हुये थे। हिन्दु लोग पत्थरों की पूजा, तीर्थ, व्रत, जप, तप, स्नान, संध्या श्राद्ध आदि में ही कर्तव्य पूर्ति समझते थे। साधु लोग बाहयाउम्बरों में प्रवृत्त होकर धन एकत्रित करते फिरते थे। साधुओं की तरह मुल्ला, पीर, औलिया, भी पथभ्रष्ट हो चुके थे। ये सब हिंसा में प्रवृत्त थे। उनमें विवेक बुद्धि नष्ट हो गयी थी। मुस्लिम लोग हज-काबा, सुन्नत, जीव-हत्या नमाज आदि में ही अपनी कर्तव्य पूर्ति समझते थे इन सब की कबीर ने घोर निन्दा की है। कबीर ने भेष बनाकर घूमनेवाले लोगों की भी तीव्र आलोचना की। साथ ही माला, तिलक, छाप, गेरुआ वस्त्रों आदि की निसरता पर भी कबीर ने जोर दिया हैं। कबीर ने हिन्दुओं की एकादशी और मुसलमानों के तीस रोजा की भी आलोचना की है।

कबीर ने स्थान-स्थान पर कर्मकाण्ड, मूर्तिपूजा, तीर्थाटन गंगास्नान और बहुदेवोपासना का खण्डन किया हैं। इस प्रकार से कबीर धर्म में व्याप्त विकारों तथा बाहयाउम्बरों की निन्दा करके पथभ्रष्ट तथा लक्ष्यच्युत जनता को मानव धर्म के उचित मार्ग पर लाना चाहते थे।

ई. <u>अंधविश्वास के संदर्भ में विद्रोह</u> :-

कबीर काल में साधारण जनता में शिक्षा का अभाव था। समुचित शिक्षा के अभाव में समाज में अनेक प्रकार के अंध:विश्वास और आडम्बर समाज में प्रचार पाते चले जा रहे थे। धर्म के ठेकेदार सामान्य जनता को फसाँ रहे थे। इन विकृत रूप के प्रति कबीर की आत्मा विद्रोह कर उठी। उनकी वाणी में इस विद्रोह-भावना की अच्छी अभिव्यक्ति मिलती हैं। कबीर अपने समय के सच्चे प्रतिनिधी थे। वे स्पष्टवादी निर्भिक और विनीत थे। दम्भ और पाखण्ड उनको अरुचिकर थे। जिन विश्वासों और आस्थाओं की पोली या कच्ची भूमिका थी, कबीर उनका विरोध करते थे। जो परस्पराएँ रूढियाँ

बन कर समाज में फैल गयी थी, कबीर ने उनके उच्छेदन के लिए भी भरसक प्रयत्न किया। कबीर ने अपनी आवाज केवल धार्मिक अंधविश्वासों के उन्मूलन के लिए ही नहीं उठाई, बल्कि सामाजिक कुरीतियों और कुप्रथाओं के निवारण के लिए भी उन्होंने इसका उपयोग किया था। कबीर रूढियों, परम्पराओं के विरोधी व्यक्ति हैं। अन्धविश्वासों के प्रति उन्हें घृणा है और सद्वृत्ति और सदाचार के प्रति उनकी अस्था हैं। कबीर को वेद कुरान के अंध-पाठ में बिल्कुल विश्वास नहीं हैं। वे अंध पाठ की निंदा करते हैं। रोजा और व्रत में कबीर को दम्भ दिखता हैं। सच्चा रोजा और व्रत तो मन की पवित्रता हैं। तीर्थों के प्रति भी कबीर की आस्था नहीं हैं।

हिन्दु धर्म के सामान्य विश्वास अपने मूल में बड़े ही सात्विक थे, परन्तु मध्यकाल तक आते-आते ये सात्विक विश्वास अंधविश्वासों में परिणित हो गये थे। और उनका प्रचार धर्म के सभी क्षेत्रों में था। मध्यकालीन जनता के लिए ये विश्वास परम्परागत रूढियों के रूप में बन कर रह गये थे। कबीर को अंधविश्वासों से बेहद घृणा थी, लोक और वेद का अन्धानुसरण उन्हें बिल्कुल पसंद न था। क्योंकि उन्हीं के अनुसरण के फलस्वरूप लोक में इतने अंधविश्वासों की उत्पत्ति हुई थी। कबीर की वाणी इन्हीं विकृत रूपों का खण्डन करने में प्रवृत्त हुई। कबीर ने संध्या, वंदना, पंच, महायज्ञ, बलि, श्राद्ध, विविध प्रकार के व्रत, तीर्थ, शौचा-शौच सम्बन्धी आचारों का खण्डन किया जो कि केवल परम्परागत रह गये थे। इन सब प्रचलित अंधविश्वासों को दूर करने का प्रयत्न कबीर ने अपनी कठोर वाणी से किया।

अंत में कबीर के बारें में इतना ही कहा जा सकता है कि वे जन्म से विद्रोही प्रवृत्ति से समाजसुधारक, कारणों से प्रेरित होकर धर्म सुधारक, प्रगतिशील दार्शनिक और आवश्यकतानुसार कवि थे।